पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में,

दीवानी विविध अधिकारिता वाद संख्या-340/2023

==========

1. कन्हैया सिंह, स्वर्गीय बद्री नाथ सिंह, के पुत्र, गाँव-पासीवाड़, पिपरा, डाकघर-चाँद परसा, थाना-हसनपुरा, जिला-सिवान के निवासी।
2. लीलावती देवी, स्वर्गीय बृजराज सिंह की पत्नी,चितौर, थाना-अंदार, जिला-सिवान के निवासी।
3. अमित कुमार सिंह, स्वर्गीय बृजराज सिंह के पुत्र चितौर, थाना-अंदार, जिला-सिवान के निवासी।
4. सीमा देवी, पत्नी राजेश सिंह की पत्नी, गाँव-करमेन, थाना-गौरी बाज़ार, जिला-देवरिया, उत्तर प्रदेश। .
5. मीरा देवी, अजय सिंह की पत्नी, गांव-राकाउली, थाना-अस्वन, जिला-सिवान के निवासी।
6. अनिल कुमार सिंह, स्वर्गीय बृजराज सिंह के पुत्र, निवासी चितौर, थाना-अंदार, जिला-सिवान
7. अजय कुमार सिंह, स्वर्गीय बृजराज सिंह के पुत्र, निवासी चितौर, थाना-अंदार, जिला-सीवान
8. इंद्रावती देवी, पति-सरदूल सिंह, गाँव-लबकानी, पी. एस. गौरी बाज़ार, जिला-देवरिया, उत्तर प्रदेश

.... याचिकाकर्ता/ओं

बनाम्

1. पारस नाथ सिंह, स्वर्गीय राजेश्वर सिंह के पुत्र, गाँव-पिपरा, थाना-एम. एच. नगर, जिला-सिवान के निवासी।
2. फतेह बहादुर सिंह, स्वर्गीय राजेश्वर सिंह के पुत्र, गाँव-पिपरा, थाना-एम. एच. नगर, जिला-सिवान के निवासी।
3. राम किशोर सिंह, स्वर्गीय राजेश्वर सिंह के पुत्र,, गाँव-पिपरा, थाना एम. एच. नगर, जिला-सिवान के निवासी।

.... प्रतिवादीगण

==========

उपस्थिति:

याचिकाकर्ताओं के लिए	:	श्री जनार्दन प्रसाद सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता
		श्री दीपक कुमार, अधिवक्ता
उत्तरदाताओं के लिए	:	श्री नागेंद्र राय, अधिवक्ता
		श्री सत्यपाल सिंह, अधिवक्ता
		श्री रजनीश कुमार चौबे, अधिवक्ता
		श्री नवीन निकुंज, अधिवक्ता

==========

ए. विचार के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दे-सारांशित

- **वर्तमान मामले में परिसीमन शुरु हो गयी और डिक्री लागू करने योग्य हो गई?**
- **क्या दिनांक 1 के आदेश द्वारा दिए गए अवसर को विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 के तहत एक आदेश कहा जा सकता है और ऐसी प्रकृति के मामलों में धारा 28 का क्या दायरा है?**
- **क्या वर्तमान याचिका विचारणीय है?**

(पैरा-16)

बी. सीमा अधिनियम, 1963-अनुच्छेद 136-*में प्रावधान है कि किसी भी डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाले डिक्री के अलावा) के निष्पादन के लिए 12 साल की परिसीमा अवधि और डिक्री के प्रवर्तनीय होने पर अवधि शुरू हो जाएगी।* ***श्री चंद्र मौली देव बनाम कुमार बिनॉय नंद सिंह और अन्य*** *के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ* ***1976 पी. एल. जे. आर. 331*** *ने अभिनिर्धारित किया है कि सीमा अधिनियम की धारा 5 निष्पादन कार्यवाही में लागू नहीं होती है। सीमा अधिनियम की धारा 15 कुछ स्थितियों में समय के अपवर्जन का प्रावधान करती है और यह उस समय के अपवर्जन की अनुमति देती है जब किसी डिक्री के निष्पादन पर निषेधाज्ञा या आदेश द्वारा रोक लगा दी गई हो।*

सी. सीमा अधिनियम, 1963-धारा 5-*सीमा अधिनियम की धारा 15-धारा 15 अपवाद के रूप में है जबकि, सामान्य नियम धारा 5 है जो अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि के बाद संहिता के आदेश 21 के किसी भी प्रावधान के तहत किसी भी आवेदन को स्वीकार नहीं करता है जो यह स्पष्ट करता है कि अधिनियम द्वारा निर्धारित समय को सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत किसी भी परिस्थिति में बढ़ाया नहीं जा सकता है। केवल एक निश्चित स्थिति में, समय अवधि को बाहर रखा जा सकता है। (पैरा 18-19)*

डी. *एक मुकदमे में अचल संपत्ति की बिक्री के लिए एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री बनाई गई है और प्रदर्शन के लिए समय निर्धारित किया गया है, इसका समय के भीतर पालन किया जाना चाहिए। अपनी चूक पर, उस अदालत को शक्ति दी गई है जिसने आदेश पारित किया है कि वह समय को और बढ़ा सके जैसा कि अदालत अनुमति दे और खरीद राशि या किसी अन्य राशि का भुगतान विस्तारित समय के भीतर किया जाए। (इस पर निर्भरताः* ***रमनकुट्टी गुप्टन बनाम अवारा एयर 1994 एससी 1699:(1994) 2 एस. सी. सी. 642 (पैरा-4)****।*

ई. विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963-धारा 28 (1)-*समय बढ़ाने के लिए उपचार के लिए प्रभावित पक्ष को आवेदन दायर करके उसी अदालत का दरवाजा खटखटाने की आवश्यकता होगी जिसे मूल पक्ष पर एक अंतर्वर्ती आवेदन माना जाना चाहिए था और इसका निपटारा विद्वान अदालत द्वारा पारित कानून-आदेश के अनुसार किया जाना चाहिए था-बहुत अनियमित।*

एफ. हमीद जोहाराम (डी) और अन्य बनाम अब्दुल सलाम (घ) और अन्य का वाद (2002 (1) पीएलजेआर (एससी) 6:(2001) 7 एस. सी. सी. 573) *यह बहुत स्पष्ट करता है कि 'जब डिक्री लागू करने योग्य हो जाती है' शब्द को इसके शाब्दिक अर्थों में पढ़ा जाना चाहिए। उसी मामले से सादृश्य लेते हुए कि शेष राशि का भुगतान डिक्री धारक*

के अधिकार क्षेत्र और नियंत्रण के भीतर था और उसे प्रस्तुत करने के मामले में किसी भी देरी को संभवतः सीमा की अवधि को रोकने के लिए नहीं कहा जा सकता है और कोई भी अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता है।

जी. विशिष्ट निष्पादन अधिनियम, 1963-धारा 16-विशिष्ट निष्पादन-*विशिष्ट निष्पादन के लिए एक अनुबंध में-समय सार है-जब डिक्री धारक लगन से आगे नहीं बढ़े और अपनी प्रतिबद्धता के हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी इच्छा नहीं दिखाई, तो यह अपनी ओर से अपने दायित्व को पूरा करने में असमर्थता को दर्शाता है और तैयारी और इच्छा की कमी को दर्शाता है और ऐसा आचरण विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16 के दायरे में आएगा। वह इक्विटी का दावा भी नहीं कर सकता। किसी भी मामले में, कानून हमेशा इक्विटी से आगे निकल जाएगा (भरोसा किया गया- **रघुनाथ राय बरेजा बनाम पंजाब नेशनल बैंक (2007) 2 एससीसी 230***

(पैरा-21)

एच. रखरखाव-सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 115-भारत का संविधान-अनुच्छेद 227-*जहां संहिता की धारा 115 के तहत उपाय की उपलब्धता है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत नागरिक विविध याचिका आम तौर पर झूठ नहीं बोलती है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक नागरिक विविध याचिका बिल्कुल भी बनाए रखने योग्य नहीं होगी-मनोरंजन और रखरखाव के बीच के अंतर पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **राज श्री अग्रवाल उर्फ राम श्री अग्रवाल और एक अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य के मामले में विचार किया गया था, जो 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1775** में रिपोर्ट किया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपचार एक संवैधानिक उपाय है और किसी भी मामले में न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। यदि उसकी*

राय में, पीड़ित पक्ष के पास सी. पी. सी. के तहत एक और प्रभावी उपाय उपलब्ध है। लेकिन यह कहना कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका बिल्कुल भी बनाए रखने योग्य नहीं होगी, मान्य नहीं है-विद्वत निचली अदालत ने त्रुटि की-विद्वत अधीनस्थ न्यायाधीश-1, सिवान द्वारा निष्पादन मामले में पारित विवादित आदेश चलने लायक नहीं है और इस तरह, दरकिनार कर दिया गया है-तत्काल याचिका की अनुमति है।

(पैरा-22)

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

कोरमः माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार झा

मौखिक निर्णय

तारीखः 25-01-2024

याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता को प्रवेश के बिंदु पर सुना और मैं प्रवेश के चरण में ही तत्काल याचिका का निपटारा करने का इरादा रखता हूं।

2. तत्काल याचिका निर्णय देनदारों-याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादन वाद सं.-3/2017, निबंधन सं-24/2017 में विद्वान अवर न्यायाधीश-प्रथम, सिवान, द्वारा पारित आदेश दिनांक 07/02/2023 को चुनौती देते हुए, दायर की गई है जिसके द्वारा और जिसके तहत निर्णय देनदार-याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादन वाद काल बाधित होने के अधर पर अस्वीकृति के लिए दायर याचिका को खारिज कर दिया है।

3. निर्णय-ऋणदाताओं/याचिकाकर्ताओं का मामला, जैसा कि अभिलेखों से प्रतीत होता है, यह है कि एक राज वल्लभ सिंह ने मदन गोपाल सिंह और श्रीमती पार्वती देवी के खिलाफ अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए स्वामित्व वाद सं.-147/1985 दायर किया था। उक्त राज बल्लभ सिंह की मृत्यु के बाद, वर्तमान प्रतिवादी सं. 1, जो राज बल्लभ सिंह की बेटी और पत्नी का पावर ऑफ अटॉर्नी धारक है, वादी बन गया। याचिकाकर्ता मदन गोपाल सिंह के वंशज हैं, जो मुकदमे में मूल प्रतिवादी संख्या-1 थे। 18.05.1995 को, विद्वान अवर न्यायाधीश प्रथम, सिवान ने दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 नियम 10 (इसके बाद 'संहिता' के रूप में संदर्भित) के तहत मुकदमे की एकतरफा सुनवाई की और वादी के पक्ष में मुकदमे की अनुमति दी, जिसमें वादी को 12000/- रुपये की शेष राशि आदेश की तारीख से 3 महीने के भीतर प्रतिवादी संख्या 2 को भुगतान करने का निर्देश दिया और प्रतिवादी संख्या 2 को वादी के पक्ष में वाद संपत्ति की बिक्री विलेख

निष्पादित करने का निर्देश दिया गया था, जिसमें विफल रहने पर वही अदालत की प्रक्रिया द्वारा और प्रतिवादी की लागत पर किया जाना था। हालांकि, स्वामित्व वाद सं.-147/1985 में डिक्री 27.05.1995 को पारित की गई थी। इसके बाद, निर्णय-देनदारों/याचिकाकर्ताओं ने विविध वाद सं. 15/1995 उपरोक्त एकतरफा फैसले को वापस लेने के लिए दायर किया, जिसे 22.08.1998 को गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया गया था। हालाँकि, उपरोक्त विविध वाद सं.-15/1995 के लंबित रहने के दौरान। प्रत्यर्थियों ने एक याचिका दायर की जिसमें विविध वाद के लंबित होने तक शेष राशि जमा करने की छूट मांगी गई थी, जिसकी अनुमति दिनांक 11.10.1996 के आदेश के माध्यम से दी गई थी। इसके बाद, निर्णय-देनदारों/याचिकाकर्ताओं ने विविध वाद सं. 29/1995, उसकी विविध वाद सं.-29/1995 की बहाली के लिए दायर किया, जिसे 26.06.2014 दिनांकित आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी और विविध वाद सं.-15/1995 को बहाल किया गया था। 09.03.2017 को, निर्णय-ऋणदाताओं/याचिकाकर्ताओं ने विविध वाद सं-15/1995 को वापस लेने के लिए एक याचिका दायर की। जिसे 15.04.2017 दिनांकित आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप, विविध वाद सं.-15/1995 को वापस लिए जाने के रुप में खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, डिक्री पारित होने के 22 वर्षों के बाद, 12.06.2017 को, प्रत्यर्थियों द्वारा निष्पादन वाद संख्या 03/2017 दायर किया गया था, जिसमें, निर्णय-देनदार/याचिकाकर्ताओं ने अपना प्रत्युत्तर दिनांक 03.05.2019 दाखिल किया और अनुच्छेद संख्या-3 से 6 में, निर्णय-देनदार/याचिकाकर्ताओं ने एक दलील पेश की है कि निष्पादन वाद को सीमा के कानून द्वारा वर्जित किया गया था और इसलिए, इसे खारिज किया जाना उचित था। प्रतिवादी-डिक्री धारक ने 02.08.2019 को अपना जवाब भी दाखिल किया जिसमें उन्होंने एक दलील पेश की है कि उन्हें विविध वाद सं-15/1995 के निपटान के बाद शेष राशि जमा करने की स्वतंत्रता दी गई थी। और, इस प्रकार, विविध वाद के लंबित होने के कारण, उन्होंने निष्पादन वाद दायर नहीं किया और इसलिए, उनके निष्पादन को सीमा

कानून द्वारा बाधित नहीं किया गया था और निर्णय-देनदारों/याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर आपत्ति खारिज करने के लिए उपयुक्त थी। विद्वान अवर न्यायाधीश-प्रथम, सिवान ने पक्षों को सुनने के बाद, निष्पादन वाद सं-3/2017 में ऋणदाताओं/याचिकाकर्ताओं की ओर से दायर आपत्ति याचिका को दिनांक 07.02.2023 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया। विद्वत विचारण न्यायालय के उक्त आदेश से व्यथित होकर, निर्णय-देनदारों/याचिकाकर्ताओं ने तत्काल याचिका दायर की है। याचिकाकर्ता निर्णय-देनदार हैं, जबकि प्रतिवादी डिक्री-धारक हैं और सुविधा के लिए, मैं याचिकाकर्ताओं और उत्तरदाताओं के लिए क्रमशः निर्णय-देनदार (जे.डी.एस.) और डिक्री-धारक (डी. एच.) शब्दों का उपयोग करूंगा।

4. जे. डी. एस की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील प्रस्तुत करते हैं कि जे. डी. एस वाद में मूल प्रतिवादी है। जे. डी. एस उपस्थित हुए और अपना लिखित बयान दायर किया, लेकिन दुर्भाग्य से, उनके वकील बाद की तारीख में उपस्थित नहीं हुए और वाद को एकतरफा घोषित कर दिया गया। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि विविध। वाद सं. 29/1998 16 वर्षों तक लंबित रहा, लेकिन स्वामित्व वाद सं. 147/1985 में डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था और न ही तब तक कोई निष्पादन वाद दायर किया गया था। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि स्वामित्व वाद सं. 147/1985 का एकतरफा निर्णय लिया गया था और निर्णय और डिक्री क्रमशः 08.05.1995 और 27.05.1995 को पारित की गई थी और उक्त डिक्री को निष्पादित करने के लिए कोई निष्पादन वाद सीमा की अवधि के भीतर, यानी 12 वर्षों के भीतर दायर नहीं किया गया है। इसके अलावा, किसी भी अदालत द्वारा निष्पादन कार्यवाही पर कोई रोक नहीं लगाई गई थी। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि डीएच एस ने बिना किसी कानूनी बहाने के डिक्री पारित करने की तारीख से 22 साल बाद निष्पादन का मामला दायर किया, जो भारतीय सीमा अधिनियम की धारा 136 के तहत निराशाजनक रूप से वर्जित है। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि इस तरह

की देरी को माफ करने के लिए कानून का कोई प्रावधान नहीं है। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि डीएच एस ने तीन महीने की अवधि समाप्त होने के बाद, विविध वाद संख्या-15/1995 की विचाराधीनता तक शेष राशि जमा करने से स्वतंत्रता की मांग करते हुए एक याचिका दायर की। और डी. एच. द्वारा अदालत से पहले कोई विस्तार नहीं मांगा गया था और विद्वान अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता बिना प्राधिकार के थी और यह एक अवैध आदेश था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि समयबद्ध निष्पादन और समानता के इस मुद्दे का निर्णय रघुनाथ राय बरेजा बनाम पंजाब नेशनल बैंक (2007) 2 एस. सी. सी. 230 में प्रतिवेदित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया है जिसमें उसने यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब कानून और समानता के बीच टकराव होता है, तो यह कानून ही प्रबल होगा। पैराग्राफ 29 प्रासंगिक है जो नीचे दिया गया हैः

> ***"29.*** *प्रत्यर्थी बैंक के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि यह बहुत अनुचित होगा यदि अपीलकर्ता जो ऋण का उत्तरदायी है, और ऋण लेने वाली कंपनी का निदेशक, ऋण का भुगतान करने से बचता है। जब हम विद्वान वकील से पूरी तरह सहमत हैं कि इक्विटी पूरी तरह से प्रतिवादी बैंक के पक्ष में है, क्योंकि स्पष्ट रूप से एक बैंक को अपने ऋणों की वसूली करने की अनुमति दी जानी चाहिए, फिर भी, हमें यह कहना चाहिए कि यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि जब कानून और इक्विटी के बीच संघर्ष होता है, तो यह वह कानून है जिसे लैटिन उक्ति "ड्यूरा लेक्स सेड लेक्स" के अनुसार प्रबल होना चाहिए, जिसका अर्थ है "कानून कठिन है, लेकिन यह कानून है"। इक्विटी केवल कानून का पूरक हो सकती है, लेकिन यह प्रतिस्थापित या अभिभावी नहीं कर सकता है।*

5. इसी तरह के प्रस्ताव पर, ***लक्ष्मी राय बनाम संजय भट्टाचार्य 2012 (2) पी. एल. जे. आर. 547*** में प्रतिवेदित के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सीमा के बिंदु पर आगे ***हमीद जोहारन (डी) अन्य बनाम बनाम अब्दुल सलाम (डी) और अन्य,2002 (1) पी. एल. जे. आर. (एस. सी.) 6 (2001) 7 एस. सी. सी. 573*** में प्रतिवेदित मामले के निर्णय पर अपनी निर्भरता रखता है। इस मामले में, स्टाम्प शुल्क का भुगतान सीमा अवधि से परे किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यह वह तारीख थी जिस पर उस स्टाम्प का भुगतान किया गया था, न कि उस तारीख के लिए जब इसे लागू किया गया था क्योंकि यह डिक्री धारक की शक्ति के भीतर था कि वह पहले स्टाम्प खरीदे और उसे जमा करे। प्रासंगिक पैराग्राफ 13 से 15 और 34 को नीचे पढ़ा गया हैः

> ***"13.*** *1963 के अधिनियम के अनुच्छेद 136 निर्धारित करता है जैसा कि ऊपर देखा गया है, बारह साल की अवधि निश्चित है और अनुच्छेद 136 के लिए जो प्रासंगिक है, वह यह है कि डिक्री कब लागू करने योग्य हुई, न कि कब डिक्री निष्पादन योग्य हुई। विश्वपति मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय [ए. आई. आर. 1972 कैल 172] ने इस मुद्दे को बहुत संक्षिप्त रूप से निपटाया है और निर्धारित किया है कि "प्रवर्तनीय" शब्द को उसके शाब्दिक अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए। प्रासंगिक तथ्यों में, आयुक्त की रिपोर्ट की स्वीकृति पर अंतिम डिक्री 20-11-1970 को पारित की गई थी, जबकि यह सच है कि स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करने का नोटिस 28-2-1972 को निर्गत किया गया था और दिया गया समय 17-3-1972 तक था, लेकिन यह अपने आप में डिक्री की प्रवर्तनीयता के संबंध में इसे अनुच्छेद 136 के दायरे से बाहर नहीं करेगा। स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करना पूरी तरह से अपीलार्थी के अधिकार क्षेत्र और नियंत्रण के भीतर एक कार्य था और इसे प्रस्तुत करने के मामले में किसी भी देरी को संभवतः सीमा की अवधि को रोकने के लिए नहीं कहा जा सकता है-कोई भी अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता हैःवास्तव में, प्रासंगिक तथ्यों में, 26-3-1984 तक कोई स्टाम्प पेपर दाखिल नहीं किया गया था-क्या इसका मतलब और तात्पर्य यह है कि अनुच्छेद 136 के तहत निर्धारित सीमा की अवधि 26-3-1984 से बारह साल की अवधि के*

लिए बढ़ाई गई है?यदि जवाब को सकारात्मक कहा जाता है, तो यह पूरी तरह से बेतुका होगा और क़ानून के प्रावधानों का मजाक उड़ाएगा। अपनी विफलता के कारण सीमा की अवधि के निलंबन को एक भ्रामक तर्क के बिना नहीं कहा जा सकता है, हालांकि, निलंबन तब किया जा सकता है जब डिक्री इस अर्थ में एक सशर्त हो कि कुछ बाहरी घटनाएं होनी चाहिए जिनकी पूर्ति पर केवल इसे लागू किया जा सकता है-स्टाम्प्ड पेपर प्रस्तुत करना पूरी तरह से डिक्री धारक के अधिकार क्षेत्र और शक्ति में था और इसके साथ उसे इसके संदर्भ में कार्य करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं था और इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डिक्री 20-11-1970 को एवं तब से लागू होने में सक्षम थी और बारह साल की अवधि की गिनती वही स की जानी चाहिए 24/8/2। यह कमोबेश एक समान स्थिति में है, यह न्यायालय पांच दशक पहले भी यशवंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद कोठारी [1950 एस. सी. सी. 766:ए. आई. आर. 1951 एससी 16:1950 एस. सी. आर. 852] में प्रतिवेदित मामले में कहा हैः(ए. आई. आर. पृष्ठ-18, पैरा 5)

"यह फरमान इस मायने में सशर्त नहीं था कि कुछ बाहरी घटना होनी थी जिसे पूरा करने पर ही इसे निष्पादित किया जा सकता था। देय राशि पर अदालती शुल्क का भुगतान पूरी तरह से डिक्री धारक की शक्ति में था और उसे तुरंत भुगतान करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं था; यह एक डिक्री थी जो इसे पारित करने की तारीख से ही निष्पादित करने में सक्षम थी।"

***14.** यह दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है कि मुद्रांकित कागज को शामिल करने से निस्संदेह डिक्री निष्पादन योग्य हो जाएगी, लेकिन इसका मतलब और संकेत यह नहीं है कि डिक्री की प्रवर्तनीयता तब तक निलंबित रहेगी जब तक कि मुद्रांकित कागज प्रस्तुत नहीं किया जाता है-यह उस मौलिक सिद्धांत के विपरीत है जिस पर सीमा के क़ानून स्थापित किए गए हैं। कानूनी परिश्रम का उपयोग करना हमारे कानून की सामान्य नीति हो सकती है और यह प्राचीन काल से सुसंगत कानूनी सिद्धांत रहा हैःयहाँ तक कि रोमन कानून में निर्देश का सिद्धांत भी कानूनी परिश्रम की ऐसी अवधारणा को निर्धारित करता है और जब से इसे इसमें शामिल किया गया है, इस सिद्धांत को हमेशा नापसंद का दावा करने के बजाय पसंद किया गया है। विधि अदालतें कभी भी एक सुस्त वादी को बर्दाश्त नहीं करती हैं क्योंकि देरी समानता को हरा देती है-लैटिन मैक्सिम विजिलेंटिबस एट नॉन डॉर्मिएंटिबस*

जुरा सबवेनियंट (कानून उन लोगों की सहायता करता है जो सतर्क हैं न जो आलसी हैं)। वास्तव में, समय का अंतराल अधिकार को जब्त करने की एक प्रजाति है। वुड, वी. सी. मैनबी बनाम बेविक [(1857) 3 के एंड जे 342:69 ई. आर. 1140] (के एंड जे पृष्ठ352) में कहा गयाः(ई. आर. पृष्ठ 1144)

"विधायिका ने इसमें, प्रत्येक सभ्य देश की तरह, जो कभी अस्तित्व में रहा है, समय की कुछ सीमाओं को निर्धारित करना उचित समझा है, जिसके बाद व्यक्ति खुद को अपनी संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे में मान सकते हैं, और उन संपत्तियों को हस्तांतरित करने में सक्षम हो सकते हैं जिनके वे कब्जे में हैं, इस आशंका के बिना कि स्वामित्व दूर की अवधि में हुए लेनदेन के संबंध में मुकदमेबाजी द्वारा आक्षेपित किया जा रहा है, जब उनके अपने स्वामित्व के समर्थन में साक्ष्य प्राप्त करना सबसे कठिन हो सकता है।"

15. *हाल ही में यह न्यायालय डब्ल्यू. बी. आवश्यक वस्तु आपूर्ति निगम में। बनाम स्वदेश एग्रो फार्मिंग एंड स्टोरेज (पी) लिमिटेड [(1999) 8 एससीसी315] को 1963 के सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 के तहत सीमा के सवाल पर विचार करने और यशवंत देवराव [1950 एससीसी 766:ए. आई. आर. 1951 एससी 16:1950 एस. सी. आर. 852] के मामले में निर्णय पर विचार करने पर यह अभिनिर्धारित किया कि सीमा अधिनियम की योजना के तहत, निष्पादन आवेदनों को सीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित समय के भीतर अदालत में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। एक डिक्री-धारक को, इस न्यायालय ने अभिलेखित किया, उसे डिक्री की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए लिए गए समय के अपवर्जन का लाभ नहीं है, जैसे कि अपीलकर्ता जो अपील करना पसंद करता है, बहुत कम वह डिक्री तैयार करने और हस्ताक्षर करने में अदालत द्वारा लिए गए समय की कटौती करने का दावा कर सकता है। जुर्माने में, इस न्यायालय ने कहा कि यदि समय की गणना डिक्री की तारीख से नहीं बल्कि इसे तैयार करने की तारीख से की जाती है, तो यह सीमा अधिनियम के साथ-साथ आदेश 20 और आदेश 21 नियम 11 सी. पी. सी. के प्रावधानों के साथ हिंसा करने के बराबर होगा, जो स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है।*

34. *यह ध्यान दिया जाए कि विधायिका किसी भी व्यक्तिगत सनक या मौज के अधीन नहीं हो सकती है। किसी भी स्थिति में, डिक्री तैयार करने के लिए संलग्न स्टाम्प पेपर प्रस्तुत करना एक मंत्रिस्तरीय अधिनियम के रूप*

में नहीं माना जा सकता है, जो संभवतः एक विधायी जनादेश को निलंबित नहीं कर सकता है। चूँकि डिक्री के साथ कोई शर्त नहीं जुड़ी हुई है और इसे अंततः पक्षों के शेयरों की घोषणा करते हुए पारित किया गया है, इसलिए न्यायालय को इस मामले से आगे निपटने की आवश्यकता नहीं है-क्या किया जाना है-किया गया है। इस प्रकार परीक्षण होना चाहिए-क्या न्यायालय ने बाद में निर्णय लेने के लिए कुछ छोड़ दिया है या क्या डिक्री किसी घटना के होने पर आकस्मिक है-यानी यह कहना कि न्यायालय अपने स्वयं के आदेश से आदेश की प्रवर्तनीयता को स्थगित कर देता है-अदालत के किसी विशिष्ट आदेश द्वारा कोई स्थगन नहीं होने की स्थिति में, डिक्री का निलंबन अप्रवर्तनीय होने के कारण उत्पन्न नहीं होगा। वास्तव में, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 2 (2) में डिक्री की परिभाषा ही उपरोक्त टिप्पणियों को विश्वसनीयता प्रदान करती है क्योंकि उस शब्द का अर्थ पक्षों के अधिकारों का निर्णायक निर्धारण" है।

6. इस प्रकार, जे. डी. के विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि यह वादी-डिक्री धारक की शक्ति के भीतर था कि वह शेष राशि का भुगतान करे और निष्पादन दाखिल करे, लेकिन वह 20 साल से अधिक समय तक इस मामले पर सोते रहे। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि उन दो विविध मामलों के लंबित रहने के दौरान, किसी भी समय निष्पादन पर कोई रोक नहीं थी। फरमान 27.05.1995 पर पारित किया गया था और बाकी पैसे 27.08.1995 पर जमा किए जाने थे। विद्वान वरिष्ठ वकील, इस प्रकार, प्रस्तुत करता है कि आक्षेपित आदेश अवैध है और अधिकार क्षेत्र के बिना है और इसे अलग कर दिया जाना चाहिए।

7. *इसके विपरीत*, डी. एच.एस के विद्वान वकील ने जोरदार तर्क दिया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत यह दीवानी विविध याचिका संहिता की संशोधित धारा 115 के आधार पर पोषणीय नहीं है और जे. डी. इस के लिए उपाय केवल संहिता की धारा 115 के तहत दीवानी पुनरीक्षण दायर करना था। विद्वान वकील प्रस्तुत करता है कि यदि जे. डी. एस के आवेदनों को विद्वान निष्पादन अदालत द्वारा अनुमति दी जाती, तो वाद समाप्त हो जाता और यह विद्वान निष्पादन अदालत के समक्ष वाद का

निपटारा कर देता। इसलिए, इस तरह के आदेश के खिलाफ, केवल की धारा 115 के तहत एक संशोधन लागू होगी और यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकता था, जब आक्षेपित आदेश संहिता की धारा 115 के तहत संशोधित करने योग्य था। इस पहलू पर, विद्वान वकील माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दो फैसलों पर निर्भर करता है; ***सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय और अन्य [(2003) 6 एस. सी. सी. 675] और दुर्गा देवी बनाम विजय कुमार पोद्दार और अन्य। (2010 (2) पीएलजेआर 954)।***

8. विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करता है कि डिक्री समय की पाबंदी नहीं बनी है। वाद में निर्णय 08.05.1995 को दिया गया था। वाद 27.08.1995 को एकतरफा घोषित किया गया था। जे. डी. ने एकतरफा डिक्री को अलग करने के लिए विविध वाद सं.-15/1995 दायर किया, जिसे 22.08.1998 पर डिफ़ॉल्ट के लिए खारिज कर दिया गया था। जबकि यह विविध वाद लंबित था, डी. एच.एस ने विविध मामले के लंबित रहने के दौरान शेष राशि जमा करने के निर्देश को स्थगित रखने के लिए एक याचिका दायर की और इसे विद्वान अदालत द्वारा जे. डी.एस की उपस्थिति में 11.10.1996 के आदेश के तहत अनुमति दी गई थी, लेकिन इस आदेश को कभी चुनौती नहीं दी गई। तत्पश्चात् विविध वाद सं.-15/1995 जिसे 22.08.1998 को डिफ़ॉल्ट के लिए खारिज कर दिया गया था, उसे 26.06.2014 को बहाल कर दिया गया था। लेकिन अंततः इसे जे. डी. एस द्वारा 15.04.2017 को वापस ले लिया गया और इसके तुरंत बाद, डी. एच.एस ने 12.06.2017 को निष्पादन वाद सं.03/2017 दायर किया। दिनांकित 11.10.1996 आदेश के प्रभाव के संबंध में, विद्वान वकील प्रस्तुत करता है कि यह आदेश इस मामले को तय करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसे कभी चुनौती नहीं दी गई थी और इस आदेश द्वारा डी. एच. एस को शेष राशि जमा करने से छूट दी गई थी। इस बिंदु पर, विद्वान वकील ने विशिष्ट राहत अधिनियम की

धारा 28 के प्रावधानों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो निम्नानुसार है:

"28. अचल संपत्ति की बिक्री या पट्टे के लिए अनुबंधों की कुछ परिस्थितियों में छूट, जिसका विशिष्ट प्रदर्शन निर्धारित किया गया है। –

(1) जहां किसी मुकदमे में अचल संपत्ति की बिक्री या पट्टे के लिए अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री बनाई गई है और खरीदार या पट्टेदार, डिक्री द्वारा अनुमत अवधि के भीतर या ऐसी आगे की अवधि के भीतर, जिसे अदालत अनुमति दे, खरीद राशि या अन्य राशि का भुगतान नहीं करता है, जिसमें अदालत ने उसे भुगतान करने का आदेश दिया है, विक्रेता या पट्टेदार उसी मुकदमे में अनुबंध को रद्द करने के लिए आवेदन कर सकता है जिसमें डिक्री दी गई है और ऐसे आवेदन पर अदालत या तो डिफाल्ट पक्ष के संबंध में या पूर्णरुपेण अनुबंध को आदेश द्वारा रद्द कर सकती है, जहां तक मामले के न्याय की आवश्यकता हो।

(2) जहां किसी अनुबंध को उप-धारा (1) के तहत निरस्त किया जाता है, वहां न्यायालय -

(क) खरीदार या पट्टेदार को निर्देश देगा, यदि उसने

विक्रेता या पट्टेदार को इस तरह के कब्जे को बहाल करने के लिए अनुबंध, के तहत संपत्ति पर कब्जा प्राप्त कर लिया है और

(ख) विक्रेता या पट्टेदार को उन सभी किराए और लाभों का भुगतान करने का निर्देश दे सकता है जो उस तारीख से संपत्ति के संबंध में अर्जित हुए हैं जिस दिन से खरीदार या पट्टेदार द्वारा कब्जा प्राप्त किया गया था, जब तक कि विक्रेता या पट्टेदार को कब्जा बहाल नहीं किया जाता है, और, यदि मामले के न्याय के लिए ऐसा आवश्यक है, तो विक्रेता या पट्टेदार द्वारा भुगतान की गई किसी भी राशि को अनुबंध के संबंध में बकाया राशि या जमा के रूप में वापस कर सकता है।

(3) यदि खरीदार या पट्टेदार खरीद राशि या अन्य राशि का भुगतान करता है जिसे उसे उप-धारा (1) में निर्दिष्ट अवधि के भीतर डिक्री के तहत भुगतान करने का आदेश दिया जाता है, तो अदालत, उसी मुकदमे में किए गए आवेदन पर, खरीदार या पट्टेदार को ऐसी अतिरिक्त राहत प्रदान कर सकती है जिसका वह हकदार हो, जिसमें उपयुक्त मामलों में निम्नलिखित सभी या किसी भी राहत शामिल हैं, अर्थात् -

(क) विक्रेता या पट्टेदार द्वारा उचित परिवहन या पट्टे का निष्पादन;

(ख) ऐसे हस्तांतरण या पट्टे के निष्पादन पर संपत्ति के कब्जे, या विभाजन और अलग कब्जे प्रदान करना

(4) इस धारा के तहत दावा की जाने वाली किसी भी राहत के संबंध में कोई अलग मुकदमा विक्रेता, खरीदार, पट्टादाता या पट्टेदार के कहने पर नहीं होगा, जैसा भी मामला हो।

(5) इस धारा के तहत किसी भी कार्यवाही का खर्च अदालत के विवेक पर होगा।"

9. इस तरह, विद्वान वकील का कहना है कि वह अवधि, जो डिक्री द्वारा अनुमत है या ऐसी आगे की अवधि जिसे अदालत अनुमति दे सकती है, इसका मतलब है कि प्रदान की गई अवधि की समाप्ति के बाद भी इसकी अनुमति दी जा सकती है। न्यायालय कार्यात्मक अधिकारी नहीं बन जाता है और उसके पास अवधि समाप्त होने के बाद भी विस्तार देने की शक्ति होती है। विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करता है कि आदेश बिल्कुल उचित था और उसे कभी चुनौती नहीं दी गया थी। मूल न्यायालय द्वारा यह अवधि बढ़ाई जा सकती है, इसे अपीलीय न्यायालय द्वारा भी बढ़ाया जा सकता है और अपील के निपटारे के बाद भी इसे बढ़ाया जा सकता है। इस पहलू पर, उन्होंने मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ***रामनकुट्टी गुप्तन बनाम अवारा ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1699 (1994) 2 एससीसी 642*** में प्रतिवेदित निर्णय पर भरोसा जताया है।

10. डीएचएस के लिए विद्वान वकील भी प्रस्तुत करते हैं कि विविध वाद सं.-29/1995। विविध वाद सं.-15/1995 की चूक के लिए बर्खास्तगी के तुरंत बाद दायर किया गया था। इसे वर्ष 2014 में बहाल किया गया था। एक बार विविध वाद को बहाल होने के बाद, पूरे मामले को पुनर्जीवित किया जाता है और सभी आदेशों को पुनर्जीवित किया जाता है।

11. विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करता है कि जहाँ तक सीमा का सवाल है, यह तब शुरू होगा जब डिक्री लागू करने योग्य हो जाती है। इस संदर्भ में, उन्होंने ***हमीद जोहारन (घ) (उपर्युक्त)*** के मामले में विशेष रूप से अनुच्छेद 4 और 34 पर भरोसा जताया है। अनुच्छेद 34 पहले ही ऊपर उद्धृत और पैराग्राफ 4 इस प्रकार हैः-

> *"4. वर्तमान में, परि-सीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 136 किसी दीवानी न्यायालय के अनिवार्य निषेधाज्ञा या आदेश को प्रदान करने वाले डिक्री के अलावा किसी डिक्री के निष्पादन के लिए बारह साल की अवधि निर्धारित करता है। जहाँ तक बारह वर्ष की अवधि शुरू होने के समय का संबंध है, क़ानून यह दर्ज करने में विशिष्ट रहा है कि अवधि डिक्री या आदेश की तारीख से शुरू होगी जब वह लागू होने योग्य हो जाएगी। हमें वर्तमान उद्देश्य के लिए कानून में परिकल्पित अन्य स्थितियों में जाने की आवश्यकता नहीं है, सिवाय इसके कि ऊपर क्या देखा गया है। संक्षेप में कहें तो ऐसा प्रतीत होता है कि डिक्री के निष्पादन के मामले में बारह साल की अवधि निश्चित रूप से विधायी विकल्प रही है। यह ध्यान दिया जाए कि अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 182 और 183 में थे और 1871 और 1877 के क़ानूनों के संबंध में, संबंधित प्रावधान क्रमशः अनुच्छेद 167,168,169 और 1791,180 में निहित थे। महत्वपूर्ण रूप से, 1908 के सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 182 में एक डिक्री के निष्पादन के लिए तीन साल की अवधि प्रदान की गई थी। यह स्पष्ट किया जाए कि चूंकि 1908 के अधिनियम का संदर्भ केवल अकादमिक होगा, इसलिए हम अनुच्छेद 182 से संबंधित विवरण दर्ज करने से खुद को रोकते हैं, सिवाय इसके जो पहले उल्लेख किया गया है। हालाँकि, इस संदर्भ में, 1963 के अधिनियम पर विधि आयोग की रिपोर्ट अनुच्छेद 136 की सीमा और सही उद्देश्य के प्रश्न के संबंध में कुछ महत्व रखती है। आगे विस्तार से बताने से पहले, विधि आयोग की रिपोर्ट को नोट करना सुविधाजनक होगा। जो निम्नानुसार हैः*
>
> *"170. अनुच्छेद 182 मुकदमेबाजी का एक बहुत ही उपयोगी स्रोत रहा है और बेईमान डिक्री-धारक और बेईमान निर्णय-देनदार दोनों के हाथों में एक हथियार है। इसने असंख्य निर्णयों को जन्म दिया है। इस लेख पर रुस्तमजी के सीमा अधिनियम (5 वीं संस्करण) में टिप्पणी लगभग 200 पृष्ठों पर है। हमारी राय में किसी भी दीवानी अदालत की डिक्री या आदेश के निष्पादन के*

लिए सीमा की अधिकतम अवधि उस तारीख से 12 साल होनी चाहिए जब डिक्री या आदेश लागू होने योग्य हो गया (जो आमतौर पर डिक्री की तारीख होती है) या जहां डिक्री या बाद का आदेश किसी निश्चित तिथि या आवर्ती अवधि में किए जाने वाले धन के भुगतान या किसी संपत्ति के वितरण का निर्देश देता है, भुगतान या वितरण करने में चूक की तारीख जिसके संबंध में आवेदक डिक्री को निष्पादित करना चाहता है। इसलिए, हर तीन साल में एक आवेदन करके डिक्री धारक को डिक्री को जीवित रखने के लिए मजबूर करने वाले प्रावधान की कोई आवश्यकता नहीं है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 48 में पहले से ही एक प्रावधान मौजूद है कि एक डिक्री 12 साल की अवधि के बाद लागू नहीं की जा सकती है। इंग्लैंड में भी निर्णय लागू करने के लिए 12 साल का समय निर्धारित किया गया है। या तो डिक्री धारक इस अवधि के भीतर अपनी डिक्री को साकार करने में सफल हो जाता है या वह विफल हो जाता है और उस अवधि के बाद डिक्री के निष्पादन को सक्षम करने वाला कोई प्रावधान नहीं होना चाहिए। इस प्रावधान के लिए एक अपवाद इस प्रभाव से बनाया जाना चाहिए कि अदालत 12 साल की अवधि की समाप्ति के बाद प्रस्तुत एक आवेदन पर डिक्री के निष्पादन का आदेश दे सकती है, जहां पटना उच्च न्यायालय C.Misc है।

निर्णय-देनदार ने धोखाधड़ी या बल द्वारा आवेदन की तारीख से ठीक पहले के बारह वर्षों के भीतर डिक्री के निष्पादन को रोक दिया है। दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 48 को हटाया जा सकता है और इसके प्रावधानों को इस अधिनियम में शामिल किया जा सकता है। अनुच्छेद 183 को हटा दिया जाना चाहिए.....

उपरोक्त सिफारिश के अनुसरण में, वर्तमान अनुच्छेद को 1908 अधिनियम के अनुच्छेद 182 और 183 के स्थान पर अधिनियमित किया गया है। दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 48 को निरस्त कर दिया गया है।"

12. डीएचएस के लिए विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री में तीन चरण होते हैं। पहले डिक्री धारक को पैसा जमा करना होता है, उसके बाद उसे बिक्री विलेख निष्पादित कराना होता है और फिर कब्जे की डिलीवरी करनी होती है। 11.10.1996 दिनांकित आदेश के माध्यम से, पहले चरण में, नीचे की

विद्वत अदालत ने धन जमा करने पर रोक लगा दी। इसलिए, पहला चरण 15.04.2017 तक शुरू नहीं हुआ था। चूंकि यह आदेश पक्षों की उपस्थिति में पारित किया गया था और इसका कभी विरोध नहीं किया गया था, इसलिए आदेश पक्षों पर बाध्यकारी है। प्रदत्त स्वतंत्रता के कारण, डिक्री वर्तमान मामले में केवल 15.04.2017 को लागू करने योग्य हो गई। उन्होंने आगे डिक्री जिसके प्रतिष्ठापन या निष्पादन पर निषेधाज्ञा या आदेश द्वारा रोक लगा दी गई है, के निष्पादन के लिए किसी भी मुकदमे या आवेदन के लिए सीमा की अवधि की गणना करने में कुछ मामलों में समय के अपवर्जन के लिए सीमा अधिनियम की धारा 15 पर निर्भरता रखी है .विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि हालांकि जे. डी.,। की ओर से तीन निर्णयों का हवाला दिया गया है, लेकिन अनुच्छेद 136 को संदर्भित सभी निर्णयों और कुल मिलाकर यह माना गया है कि प्रारंभ की तारीख प्रवर्तनीयता की तारीख से है। जे. डी., । द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया, अर्थात ***रघुनाथ राय बरेजा और अन्य (ऊपर) के साथ-साथ लक्ष्मी राय (उपर्युक्त)*** तथ्यों पर अलग किए जा सकते हैं क्योंकि न तो इन दोनों मामलों में विशिष्ट निष्पादन के लिए कोई मुकदमा था और न ही वर्तमान की तरह कोई अंतरिम आदेश था। अंत में, उन्होंने ***उमा शंकर शर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्न. 2005 1 पी.एल.जे.आर. 541*** मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है जिसमें न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि निचली अदालतों की डिक्री तब प्रवर्तनीय हो गई जब दूसरी अपील खारिज कर दी गई। विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करता है कि वर्तमान मामले में, डिक्री विविध वाद सं-15/1995 को 15.04.2017 को खारिज करने के बाद ही लागू करने योग्य हो गई। .

13. जवाब में, जे. डी.एस. की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ वकील प्रस्तुत करते हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका विचारणीय है क्योंकि संहिता की धारा 115 के प्रावधान अदालत की शक्ति को कम नहीं कर सकते हैं। विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि केवल नामकरण में बदलाव इस न्यायालय की

अधिकारिता को नहीं ले लेगा। संहिता की धारा 115 के तहत दीवानी पुनरीक्षक इस न्यायालय के समक्ष उसके पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान दीवानी विविध याचिका में भी होगा। इसके अलावा, दीवानी विविध याचिका तब भी पोषणीय है जब संहिता की धारा 115 के तहत भी उपाय उपलब्ध हो। इस पहलू पर, ***अरुण कुमार बनाम श्रीमती श्यामपति कुँअर और अन्य (2017(2) पी.एल.जे.आर. 958)*** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया है जिसमें दुर्गा देवी (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय के खंड पीठ के फैसले का भी उल्लेख किया गया था। इसके अलावा, मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में, विद्वान वकील इस बात पर जोर देते हैं कि अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका पोषणीय है।

14. जे. डी.एस. की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि विविध वादों में पारित आदेश पर बहुत जोर दिया गया है जिसमें डी. एच. को विविध वाद संख्या-15/1995 के निपटारे के बाद शेष राशि जमा करने की अनुमति दी गई है। .यदि उक्त प्रस्ताव को वैध माना जाता है, तो इस विविध वाद को 22.08.1998 को खारिज कर दिया गया था और जब इसे खारिज कर दिया गया था, तो डी. एच.एस. को राशि जमा करने की आवश्यकता थी। खरीद राशि के भुगतान के लिए समय बढ़ाने के संबंध में, विद्वान वरिष्ठ वकील प्रस्तुत करते हैं कि स्वतंत्रता कानूनी या अवैध रुप से दी जा सकती है और भले ही इसका विरोध नहीं किया गया था, फिर भी वह स्वतंत्रता केवल 28.08.1998 तक थी। जब विविध वाद सं.-15/1995 खारिज कर दिया गया था, तो डी.एच.एस. को पैसे जमा करने चाहिए थे। यदि 1998 में विविध वाद को खारिज करने के बाद सीमा शुरू हो गई, तो यह वर्ष 2010 में समाप्त हो गई और चूंकि कोई पैसा जमा नहीं किया गया था, इसलिए निष्पादन सीमा द्वारा वर्जित हो गया। एक बात यह भी बहुत महत्वपूर्ण है कि यह अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक वाद है जिसमें तैयारी और इच्छा बहुत महत्वपूर्ण है। शेष राशि जमा करने के लिए समय बढ़ाने की इसी याचिका से

यह स्पष्ट होता है कि डीएचएस डिक्री के संदर्भ में भुगतान करने के लिए तैयार नहीं थे। एक अन्य निर्णय जो जे. डी.एस के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत किया गया है, **श्री चंद्र मौली देव बनाम कुमार बिनोया नंद सिंह और अन्य 1976 पी. एल. जे. आर. 331** में प्रतिवेदित का मामला है, अनुच्छेद संख्या- 4 और 5 को नीचे पढ़ा गया हैः-

> *"4. बेशक, डिक्रीटल राशि की वसूली के लिए लागू अनुच्छेद अधिनियम का अनुच्छेद 136 है। यह अनुच्छेद पुराने सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 182 के अनुरूप है। इन अनुच्छेदों को उद्धृत करना उपयोगी होगा। अधिनियम का अनुच्छेद 136 और पुराने सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 182, इस प्रकार है:-*

136. जब डिक्री किसी भी सिविल न्यायालय की डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाली डिक्री के अलावा) या आदेश का निष्पादन।	*बारह साल।*	*या आदेश प्रभावी हो जाता है। प्रवर्तनीय या जहां डिक्री या कोई पश्चातवर्ती आदेश किसी निश्चित तारीख को या आवर्ती अवधियों पर किसी धन का भुगतान या किसी संपत्ति का परिदान करने का निर्देश देता है, जब भुगतान या परिदान करने में चूक होती है, जिसके संबंध में निष्पादन चाहा गया है, -* *बशर्ते कि शाश्वत निषेधाज्ञा प्रदान करने वाली डिक्री के प्रवर्तन या निष्पादन के लिए आवेदन किसी परिसीमा अवधि के अधीन नहीं होगा।*
182. किसी सिविल न्यायालय के किसी डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए, जो सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अनुच्छेद 183 या धारा 48 द्वारा उपबंधित नहीं है।	*1908 का अधिनियम.* *अनुच्छेद 182* *तीन वर्ष; या जहां प्रमाणित हो, वहां डिक्री या आदेश की प्रति पंजीकृत कर दी गई हो, छह वर्ष।*	*1. डिक्री या आदेश की तारीख, या* *2. (जहां कोई अपील हुई हो); अपील न्यायालय के अंतिम निर्णय या आदेश की तारीख, या अपील वापस लेने की तारीख, या* *3. (जहां निर्णय की समीक्षा की गई है) समीक्षा पर पारित निर्णय की तारीख, या* *4. (जहां डिक्री में संशोधन किया गया है) संशोधन, या तारीख* *5. (जहां आगे उल्लिखित आवेदन किया गया है) निष्पादन के लिए उचित न्यायालय में कानून के अनुसार किए गए आवेदन पर पारित अंतिम आदेश की तारीख या डिक्री या आदेश के निष्पादन में सहायता के लिए कुछ कदम उठाने की तारीख, या*

6. डिक्री या आदेश के निष्पादन द्वारा वसूल की गई किसी राशि के संबंध में, डिक्रीधारक को ऐसे वापसी के लिए मुकदमे में पारित डिक्री द्वारा वापसी का निर्देश दिया गया है, ऐसी अंतिम उल्लिखित डिक्री की तारीख या, उससे अपील के मामले में, अपीलीय न्यायालय की अंतिम डिक्री की तारीख या अपील की वापसी की तारीख, या

7. (जहां आवेदन किसी ऐसे भुगतान को लागू करने के लिए है जिसे डिक्री या आदेश किसी निश्चित तारीख को करने का निर्देश देता है) ऐसी तारीख।

***5.** अपीलार्थी के विद्वान वकील ने पहले तर्क दिया कि नए अनुच्छेद की सीमा उस दिन से संचालित होती है जब डिक्री लागू होने योग्य हो जाती है, जबकि पुराने परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 182 के तहत समय डिक्री की तारीख से संचालित हुआ। उन्होंने आगे तर्क दिया कि डिक्री को सील करने और हस्ताक्षर करने के बाद डिक्री लागू हो गई। यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो 12 वर्षों के भीतर निष्पादन लगाया गया है और इसलिए, सीमा द्वारा वर्जित नहीं है। दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि "डिक्री की तारीख से" जब डिक्री लागू करने योग्य हो जाती है, तो जहां तक वर्तमान डिक्री का संबंध है, स्थिति में कोई बदलाव नहीं होता है। उन्होंने तर्क दिया कि दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XX के नियम 7 के आधार पर, डिक्री की तारीख निर्णय की तारीख होती है और निर्णय सुनाए जाने के तुरंत बाद डिक्री लागू हो जाती है। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि निष्पादन वाद को सीमा द्वारा वर्जित माना गया है। अपनी दलीलों के समर्थन में इस न्यायालय और कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का हवाला दिया गया है। उन मामलों से निपटने से पहले, यह देखना उपयोगी होगा कि परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 182 को अधिनियम के नए अनुच्छेद 136 द्वारा क्यों प्रतिस्थापित किया गया था।*

15. इस न्यायालय की खंड पीठ ने निर्णय दिया कि सीमा अधिनियम की धारा 5 संहिता के आदेश 21 के तहत कार्यवाही पर लागू नहीं होती है। विद्वान वरिष्ठ वकील, इस प्रकार, प्रस्तुत करते हैं कि 12 साल की अवधि को एक दिन के लिए भी नहीं बढ़ाया जा सकता है और यह 08.05.1995 से लागू हो गया और यह 08.05.2007 को और सबसे खराब स्थिति में 21.08.2010 को समाप्त हो गया। विद्वान वरिष्ठ वकील प्रस्तुत करते हैं कि वापस लेने के प्रभाव या वापसी के कारण बर्खास्तगी के प्रभाव से, उस विविध मामले में पारित पूरे अंतर्वर्ती आदेश गैर-स्थायी हो गए। इसका कोई अर्थ नहीं है और इसके अलावा, यह आदेश एकपक्षीय डिक्री को वापस लेने के लिए विविध मामले में पारित किया गया था, न कि समय अवधि के विस्तार के लिए डी. एच. द्वारा स्थापित एक अलग कार्यवाही में।

16. पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों को ध्यान में रखते हुए, विचार के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता हैः

(i) वर्तमान वाद में सीमा कब संचालित हुई और डिक्री कब लागू करने योग्य हो गई?

(ii) क्या दिनांकित 11.10.1996 आदेश द्वारा दिया गया अवसर को विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 के तहत एक आदेश कहा जा सकता है और ऐसी प्रकृति के मामलों में धारा 28 का दायरा क्या है?

(iii) क्या वर्तमान याचिका विचारणीय है?

17. मामला शुरू करने से पहले, मामले के तथ्यों को याद रखना उपयोगी होगा। मामले में निर्णय 08.05.1995 को दिया गया था और डिक्री 27.05.1995 पर तैयार की गई थी। विविध वाद सं.-15/1995, एक पक्षीयेडिक्री को दरकिनार करने के लिए वाद में 1995 में दायर किया गया था और उक्त विविध वाद में, दिनांक 11.10.1996 के आदेश के माध्यम से उपरोक्त स्वतंत्रता दी गई थी। विविधवाद सं.-15/1995 को 22.08.1998 को चूक

के कारण खारिज कर दिया गया था और बाद में इसे 26.06.2014 को पुनःस्थापित कर दिया गया था। जे. डी.एस. ने 15.04.2017 को अपना विविध वाद वापस ले लिया और 12.06.2017 को निष्पादन वाद दर्ज किया गया।

18. अब, सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 136 में प्रावधान है कि किसी भी डिक्री (अनिवार्य निषेधाज्ञा देने वाले डिक्री के अलावा) के निष्पादन के लिए 12 साल की सीमा अवधि और डिक्री के लागू होने पर अवधि शुरू हो जाएगी। ***श्री चंद्र मौली देव (उपरोक्त)*** के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ ने निर्णय दिया है कि सीमा अधिनियम की धारा 5 निष्पादन कार्यवाही में लागू नहीं होती है। सीमा अधिनियम की धारा 15 कुछ स्थितियों में समय के अपवर्जन का प्रावधान करता है और जब किसी डिक्री के निष्पादन पर निषेधाज्ञा या आदेश द्वारा रोक लगा दी गई हो तो यह उस समय के अपवर्जन की अनुमति देता है,

19. डीएचएस के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि जब विद्वान निचली अदालत ने डीएचएस को विविध मामले के लंबित रहने के दौरान देय राशि के भुगतान से स्वतंत्रता दी, तो उसने अनिवार्य रूप से डिक्री के निष्पादन पर रोक लगा दी। इसलिए, समय की गणना शुरू नहीं होगा और यह विविध वाद सं-15/1995 के लंबित रहने के दौरान वापस लेने की तिथि 15.04.2017 तक रुका रहा।

इसके अलावा, विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 पर डी. एच.एस. के वकील ने अपने इस तर्क को मजबूत करने के लिए भरोसा किया है कि भुगतान करने के लिए समय बढ़ाना विद्वत निचली अदालत की शक्ति के भीतर था।

मुझे डी.एच.एस. के विद्वान वकील का तर्क गलत लगता है। सीमा अधिनियम की धारा 15 अपवाद के रूप में है, जबकि सामान्य नियम धारा 5 है जिसमें अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि के बाद संहिता के आदेश 21 के किसी भी प्रावधान के तहत किसी भी आवेदन को स्वीकार नहीं किया जाता है, जो यह स्पष्ट करता है कि अधिनियम द्वारा

निर्धारित समय को सीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत किसी भी परिस्थिति में बढ़ाया नहीं जा सकता है। केवल एक निश्चित स्थिति में, समय अवधि हो सकती है।

20. विविध वाद सं.-15/1995 में अदालत द्वारा दी गई स्वतंत्रता पर बहुत जोर दिया गया है। डीएचएस के अनुसार, उक्त स्वतंत्रता का अर्थ है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए भुगतान करने की समय अवधि बढ़ा दी गई है। दूसरी ओर, जे. डी.एस की ओर से यह तर्क दिया गया है कि इसके विस्तार से पहले ही समय समाप्त हो गया था। हालांकि, ***रामनकुट्टी गुप्तन (ऊपर)*** पर निर्भर निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 4 में कहा है कि एक मुकदमे में अचल संपत्ति की बिक्री के लिए एक अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक डिक्री बनाई गई है और निष्पादन के लिए समय निर्धारित किया गया है, इसका समय के भीतर पालन किया जाना चाहिए। उसकी चूक पर, उस अदालत को शक्ति दी गई है जिसने आदेश पारित किया है कि वह समय को और बढ़ा सके जैसा कि अदालत अनुमति दे और खरीद राशि या किसी अन्य राशि का भुगतान विस्तारित समय के भीतर किया जाए। इसका मतलब है कि उसी अदालत द्वारा डिक्री में निर्धारित समय अवधि समाप्त होने के बाद भी समय अवधि बढ़ाई जा सकती है। हालांकि, समय बढ़ाने के लिए विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 28 (1) के तहत उपचार के लिए प्रभावित पक्ष को आवेदन दायर करके उसी अदालत का दरवाजा खटखटाने की आवश्यकता होगी, जिसे मूल पक्ष पर एक अंतर्वर्ती आवेदन माना जाना चाहिए और कानून के अनुसार निपटाया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं है कि कोई एकतरफा आदेश को दरकिनार करने के लिए जे. डी.एस. द्वारा विविध वाद में दायर आवेदन से भी यही उद्देश्य पूरा होगा। इसलिए, नीचे दी गई विद्वान अदालत द्वारा पारित आदेश अत्यधिक अनियमित था। किसी भी मामले में इस तरह का विस्तार सीमा को परिचालन से नहीं रोक सका।

21. भले ही तर्क के लिए, यह माना जाता है कि 11.10.1996 दिनांकित आदेश एक वैध विस्तार था, वही 22.08.1998 को समाप्त हो गया जब विविध वाद को

डिफ़ॉल्ट के लिए खारिज कर दिया गया था। इसलिए, डी. एच.एस द्वारा भुगतान पर 26.06.2014 तक कोई रोक नहीं थी। यदि डिक्री 22.08.1998 को लागू करने योग्य हो जाती है, तो 12 साल की अवधि अंततः 21.08.2010 को समाप्त हो जाएगी। इस अवधि के दौरान अपने निष्पादन मामले को प्राथमिकता नहीं देने के लिए डी. एच.एस. द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं है। डी. एच.एस. इस तथ्य की सहारा नहीं ले सकते हैं कि विविध वाद को 26.06.2014 को पुनस्थापित किया गया था और सीमा शुरू से ही पुनर्जीवित होगी। इसलिए, डी. एच.एस. के विद्वान वकील का यह तर्क कि डिक्री केवल वर्ष 2017 में लागू करने योग्य हो गई, सही नहीं है। इसलिए, डी. एच.एस. के विद्वान वकील के तर्क को खारिज कर दिया जाता है। यहां तक कि ***हमीद जोहाराम (उपरोक्त)*** के मामले में निर्णय भी यह बहुत स्पष्ट करता है कि 'जब डिक्री लागू करने योग्य हो जाती है' शब्द को इसके शाब्दिक अर्थों में पढ़ा जाना चाहिए। उसी मामले से सादृश्य लेते हुए कि शेष राशि का भुगतान डी. एच.एस. के अधिकार क्षेत्र और नियंत्रण के भीतर था और उसे प्रस्तुत करने के मामले में किसी भी देरी को संभवतः सीमा की अवधि को रोकने के लिए नहीं कहा जा सकता है और कोई भी अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता है। इसलिए, डी. एच.एस. को कोई अधिकार अर्जित नहीं किया गया और डिक्री को कभी भी स्थगित नहीं किया गया। इसके अलावा, विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक अनुबंध में, समय सार है और जब डिक्री धारक लगन से आगे नहीं बढ़े और अपनी प्रतिबद्धता के हिस्से को पूरा करने के लिए अपनी इच्छा नहीं दिखाई, तो यह डी. एच.एस. की ओर से अपने दायित्व को पूरा करने में असमर्थता को दर्शाता है और तैयारी और इच्छा की कमी को दर्शाता है और ऐसा आचरण विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 16 के दायरे में आएगा। वह समानता का दावा भी नहीं कर सकता। किसी भी मामले में, कानून हमेशा समानता से आगे निकल जाता और ***रघुनाथ राय बरेजा (ऊपर)*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय पर भरोसा रखा जा सकता था।

22. जहाँ तक पोषणीयता का सवाल है, मुझे लगता है कि यह कोई मुद्दा नहीं है। जहां संहिता की धारा 115 के तहत उपचार की उपलब्धता है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दीवानी विविध याचिका आम तौर पर नहीं होगी। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दीवानी विविध याचिका बिल्कुल ही पोषणीय नहीं होगी। ***राजश्री अग्रवाल उर्फ रामश्री अग्रवाल और अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाईन एस सी सी 1775*** में प्रतिवेदित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मनोरंजन और रखरखाव के अंतर एवं विभिन्नता पर विचार किय, जिसमें यह अभिनिर्धातिर किया गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपाय एक संवैधानिक उपाय है और किसी मामले में न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, अगर उसकी राय में, पीड़ित पक्ष के पास सी.पी. के तहत अन्य प्रभावी उपाय उपलब्ध है। लेकिन यह कहना कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी, मान्य नहीं है। एक बार जब यह मामला इस न्यायालय के समक्ष आया और उसी पर सुनवाई हुई, तो याचिकाकर्ताओं/जे.डी.एस., को संहिता की धारा 115 के तहत एक और याचिका दायर करने के लिए खारिज करना अनुचित है और इसके परिणामस्वरूप समय की बर्बादी होगी यदि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका पर विचार कर सकता है।

23. ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, मुझे लगता है कि विद्वान निचली अदालत ने एक त्रुटि की जब उसने डी.एच. की समयबद्ध निष्पादन कार्यवाही के खिलाफ जे.डी. के आवेदन को खारिज कर दिया और इसलिए, विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश-1, सिवान द्वारा निष्पादन वाद सं.-3/2017 में पारित किया गया आक्षेपित आदेश टिकाऊ नहीं है और इस तरह, उसे दरकिनार किया जाता है। नतीजतन, सीमा द्वारा वर्जित निष्पादन

मामले की अस्वीकृति के लिए जे. डी.एस. द्वारा दायर 21.06.2019 दिनांकित आवेदन की अनुमति है।

24. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, तत्काल याचिका की अनुमति दी जाती है।

(अरुण कुमार झा, न्यायमूर्ति)

वी.के. पाण्डे/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।